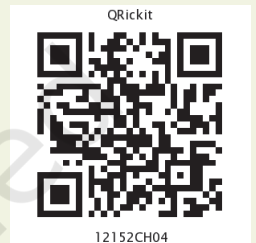


4

प्राचीन एवं आधुनिक गायन शैलियाँ

जाति गान

संगीत के संदर्भ में जाति शब्द का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान काल में रागों में प्रयुक्त स्वरों की संख्या को इंगित करने के लिए औड्व-षाड्व तथा संपूर्ण आदि नामों को भी रागों की जाति कहा जाता है। परंतु प्राचीन काल में आधुनिक राग गायन के समान जाति गायन शास्त्रीय संगीत का वह स्वरूप था जो अनेक शास्त्रोक्त लक्षणों पर आधारित था। राग गायन के अनेक लक्षणों में पूर्व प्रचलित जाति गायन के अनेक लक्षण भी समन्वित हैं। यहाँ ‘जाति’ का अर्थ श्रेणी, समूह, वर्ग अथवा सांगीतिक प्रकार से है। जातियों का निर्देश रामायण से होता है। रामायण के समय में गायन सप्त जातियों में निबद्ध था। रामायण के पश्चात जाति के रूप का विस्तृत विवरण भरत कृत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है, जिससे जाति के स्वरूप को जाना जा सकता है। जाति क्या है, इसका उल्लेख मतंग की बृहद्देशी से होता है।



“श्रुति ग्रह स्वरादि समूहाद्जायन्ते इति जातयः”

अर्थात् श्रुति, ग्रह आदि स्वरों के समूह को जाति कहते हैं। श्रुति से तात्पर्य सुनने योग्य सूक्ष्म ध्वनि, जो संगीत में प्रयुक्त होती है तथा ग्रहादि स्वरों से तात्पर्य जाति में प्रयुक्त होने वाले मुख्य स्वर से है, अतः इस प्रकार जब स्वरों की योजना होती है, तब इसे ‘जाति’ की संज्ञा दी जाती है। अभिनव गुप्त के अनुसार स्वरों के विशेष सन्निवेश, जिसमें जाति के दस लक्षण ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाड्व, औड्व आदि नियमों का पालन हो, वह जाति गायन कहलाता है। इससे प्रतीत होता है कि जाति गायन का विकास संगीत की बहुत विकसित अवस्था में हुआ।

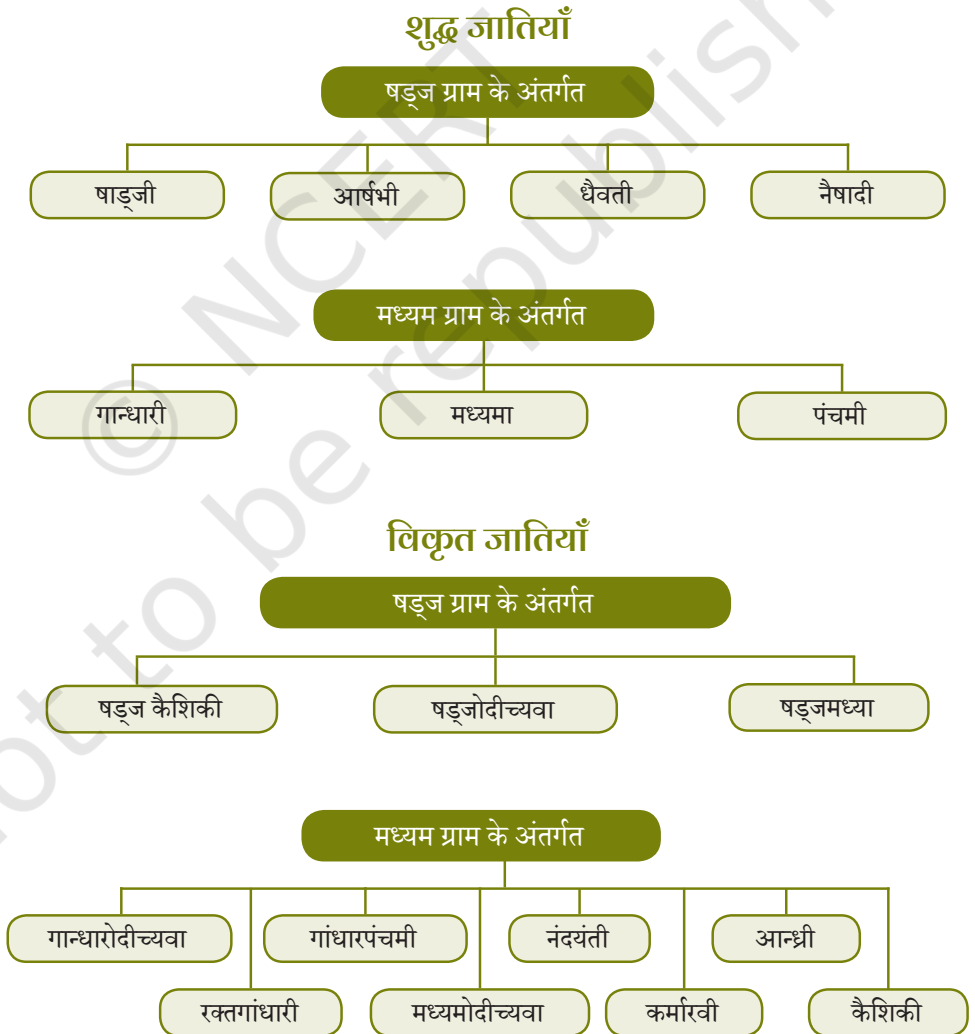
पंडित शार्ङ्गदेव के अनुसार ‘जाति’ की उत्पत्ति सामवेद से अथवा साम-गान से हुई है। साम का गायन पहले तीन या चार स्वरों में किया जाता था, लेकिन धीरे-धीरे सात स्वरों का विकास होता गया और साम-गान भी सात स्वरों में किया जाने लगा। इन साम-गान की स्वरावलियों से ही जाति की उत्पत्ति हुई है। जाति गान में स्वर व पद के प्रयोग को निर्धारित करने के लिए गीतियों का आविर्भाव हुआ जो दो प्रकार की थी—

स्वराश्रिता व पदाश्रिता। भरत ने गंधर्व के अंतर्गत स्वराश्रिता तथा पदाश्रिता दोनों का विवेचन किया है।

स्वर गत जातियों का संबंध स्वरों से था। स्वर गत जातियाँ अठारह मानी गईं, जिनका विभाजन उस समय में प्रचलित षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम में किया गया था।

- ✿ षड्ज ग्राम के अंतर्गत जिन सात जातियों का उल्लेख है, वे षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षड्जोदीच्यवती, षड्जकैशिकी तथा षड्ज मध्या हैं।
- ✿ मध्यम ग्राम के अंतर्गत ग्यारह जातियों का अंतर्भाव है। गांधारी, मध्यमा, गांधारोदीच्यवा, पंचमी, रक्त गांधारी, गांधार पंचमी, मध्यमोदीच्यवा, नंदयंती, कर्मारवी, आंध्री तथा कैशिकी।

दोनों ग्राम की अठारह जातियों को भरत ने शुद्ध तथा विकृत दो भागों में विभाजित किया है—





जाति में प्रयुक्त स्वर संख्या के अनुसार जातियों को तीन भागों में विभाजित किया गया है— संपूर्ण, षाड्व तथा औड्व।

जातियाँ मार्ग तालों में निबद्ध होती थीं जिनके नाम चंचत्पुट, चाचपुट, पंचपाणी, षट्पितापुत्रक तथा उद्भट आदि हैं। जाति गायन में लय के प्रयोग में भी नियम होते थे। आरंभ में द्रुत लय में, फिर उसी गीत को मध्य लय में तथा बाद में विलंबित लय में गाया जाता था। जो कुछ उस समय में गाया जाता था, वह सब जाति में स्थित था।

यत्किंचिदेतद् गीते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्

ग्रंथों में जातियों के प्रस्तार तथा उनके गीतों को तालबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। शब्द युक्त तालबद्ध स्वर लेखों को *संगीत रत्नाकर* में “आक्षिप्तिका” की संज्ञा दी गई है, कठोर नियमों के कारण लगभग सातवीं-आठवीं शताब्दी के आते-आते जाति प्रथा का लोप होना शुरू हुआ तथा धीरे-धीरे राग पद्धति का विकास हुआ। जाति के नियमों में कुछ परिवर्तन तथा ढील के साथ लगभग जाति के ही लक्षण राग में प्रयुक्त हुए।

जाति लक्षण

जाति गान के दस लक्षण इस प्रकार थे— ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाड्व, औड्व, तार तथा मंद्र।

ग्रह स्वर— जाति में अनिवार्यतः ग्रह स्वर ही अंश स्वर हुआ करता था, ग्रह उस अंश को कहा जाता था, जिससे जाति गायन का आरंभ होता था।

अंश स्वर— जातियों में अंश स्वर का सर्वाधिक महत्व है। अंश स्वर निम्न दस लक्षणों से युक्त रहता है। इसमें राग का निवास होता था, राग का आविर्भाव इस स्वर से होता था। यह स्वर तार तथा मंद्र का द्योतक होता था। स्वरों में इसका सर्वाधिक प्रयोग होता था। अंश स्वर की तुलना राग में प्रयुक्त होने वाले वादी स्वर से की जाती है।

तार तथा मंद्र— तार तथा मंद्र का विशिष्ट विधि से प्रयोग जाति की विशेषताओं में से एक है।

न्यास तथा अपन्यास— न्यास वह स्वर था जिस पर गीत की समाप्ति होती थी। अपन्यास, गीत के मध्य खंड के अंत में प्रयुक्त होता था।



चित्र 4.2— गायन एवं तबला वादन प्रस्तुति

अल्पत्व तथा बहुत्व— केवल अंश स्वरों के आधार पर जाति गायन संभव नहीं है, अतः उसके अतिरिक्त अन्य स्वरों का अल्पत्व तथा बहुत्व जाति को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। स्वरों के अल्पत्व के दो प्रकार लंघन तथा अनभ्यास हैं तथा बहुत्व के दो प्रकार ‘अलंघन तथा अभ्यास’ हैं।

षाड्व तथा औड्व— षाड्व तथा औड्व क्रमशः छह तथा पाँच स्वरावली को दर्शाते हैं।

उपरोक्त लक्षणों में षाड्व तथा औड्व का समन्वय होने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जाति गायन के समय में संपूर्ण, षाड्व व औड्व जातियों का आविर्भाव हो चुका था जिनके आधार पर आज की राग व्यवस्था में भी रागों के आरोह व अवरोह में प्रयुक्त स्वरों की संख्या के आधार पर रागों की जाति निश्चित की जाती है। संपूर्ण, षाड्व व औड्व— इन तीन प्रमुख जातियों के पारस्परिक मेल से नौ जातियों की निर्मिति होती है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि यह जाति गायन या राग गायन का एक लक्षण मात्र है जबकि जाति गान प्राचीन काल में प्रचलित एक गेय विधा थी।



1. रामायण के पश्चात किन ग्रंथों में जाति गान का वर्णन उपलब्ध होता है?
2. जाति गान के नियमों का वर्णन कीजिए।
3. जाति गान और वर्तमान युग में गाए जाने वाले राग कैसे एक-दूसरे के समान हैं?
4. जाति के लक्षण कितने हैं, उनके नाम लिखिए।
5. अल्पत्व तथा बहुत्व से क्या अभिप्राय है?
6. जाति गान के लिए किन्हीं तीन तालों के नाम बताएँ।
7. शुद्ध जातियों के नाम बताएँ।
8. विकृत जातियों के नाम बताएँ।

प्रबंध गायन

संगीत रत्नाकर में गीत की परिभाषा के रूप में कहा गया है—

‘रंजकः स्वर संदर्भो गीतमित्यभिधीयते’

अर्थात् मन का रंजन करने वाला स्वर संदर्भ ‘गीत’ कहलाता है। गीत के दो भेद हैं— गांधर्व तथा गान। गांधर्वों द्वारा रचित, कठोर नियमों से बद्ध गान को ‘गांधर्व’ कहा गया जिसका उद्देश्य श्रेयस अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति तथा अभ्युदय (भय रहित) प्रदान करने वाला माना गया तथा वाग्येयकारों द्वारा रचित लोक रंजन तथा रुचि अनुसार नियमों में परिवर्तन के साथ जिस





संगीत की रचना होती है, उसे 'गान' कहा गया। गान के दो प्रकार माने गए— निबद्ध गान तथा अनिबद्ध गान।

निबद्ध गान— वह गान जो स्वर व ताल में बंधा हो। इसके अंतर्गत तीन संज्ञाएँ हैं, जिन्हें प्रबंध, वस्तु तथा रूपक कहा गया।

अनिबद्ध गान— यति, पाद के नियम से स्वतंत्र तथा वाद्यों पर बजाए जाने वाले अक्षर, अनिबद्ध गान की श्रेणी में समन्वित कहे गए।

प्रबंध शब्द, प्र उपसर्ग तथा बंध धातु के योग से बना है, जिस का अर्थ है ऐसी रचना, जो नियमबद्ध हो। बंध शब्द का तात्पर्य बाँधने से है। साहित्य में भी निबंध, प्रबंध तथा प्रबंधकाव्य आदि कई अर्थों में इस शब्द का प्रयोग होता है। संगीत में प्रयुक्त होने वाले प्रबंध में भी यही अर्थ निहित है, क्योंकि संगीत में धातु एवं अंगों की सीमा में बंधकर जो रूप बनता है, वह प्रबंध कहलाता है। प्रबंध के लिए आज प्रचलित शब्द 'बंदिश' कहा जा सकता है। सातवीं-आठवीं शताब्दी (मत्तंग के समय) तक प्रबंधों का पूर्ण रूप से विकास हो चुका था। इस समय इन पदों की भाषा संस्कृत



चित्र 4.3— गायन प्रस्तुति

के अतिरिक्त तत्कालीन प्रचलित अन्य प्रादेशिक भाषाएँ भी थीं। बारहवीं शताब्दी में जयदेव द्वारा रचित *गीत-गोविंद* में संस्कृत भाषा की अष्ट पदियाँ प्रबंध के श्रेष्ठ उदाहरण हैं, बाद में संगीत की विधाओं में परिवर्तन स्वरूप हिंदी, ब्रज, अवधी भाषाओं का प्रयोग भी होने लगा।

संगीत रत्नाकर में पंडित शार्ङ्गदेव ने कहा है कि प्रबंध की चार धातु तथा छह अंग होते हैं। चार धातुओं के नाम उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव तथा आभोग हैं तथा अंतरा नामक धातु का प्रयोग आवश्यकतानुसार ध्रुव का आभोग के बीच किया जा सकता है। उद्ग्राह प्रबंध का पहला भाग होता है, जहाँ से गायन तथा आरंभ होता है। मेलापक दूसरा भाग है, जो पहले और तीसरे भाग को जोड़ता है।

ध्रुव, प्रबंध का तीसरा और आभोग चौथा एवं अंतिम भाग है। प्रबंध में ध्रुव भाग का कभी लोप नहीं होता था। इन धातुओं में से यदि कोई धातु कम करनी हो, तो ध्रुव के अतिरिक्त अन्य कोई भी धातु छोड़ी जा सकती है।

प्रबंध के अंग

पंडित शार्ङ्गदेव ने प्रबंध को एक पुरुष के रूप में माना है और प्रबंध के छह अंगों को पुरुष के छह अंगों के समान कहा है। प्रबंध के छह अंग— स्वर, बिरुद, पद, तेनक, पाट तथा ताल हैं।

उनके अनुसार तेनक और पद नेत्र के समान, पाट और बिरूद हस्त के समान तथा ताल और स्वर चरण के समान हैं।

स्वर सा, रे, ग, म आदि (गाने योग्य ध्वनि)। स्वर के बिना कोई रचना गाई नहीं जा सकती, अतः यह प्रबंध का अनिवार्य अंग है।

बिरूद गुण सूचक नाम या पद को बिरूद कहते हैं।

पद गीत अथवा गाने योग्य साहित्य (पद) होता है।

तेनक मंगलार्थ पद होते हैं, जैसे— हरिओम, अनंत आदि।

पाट ताल वाद्यों पर बजने वाले वर्ण समूह को पाट कहते हैं। प्राचीन प्रबंध, त्रिवट, तराना, चतुरंग आदि में ऐसे बोल बोले जाते थे। प्रबंध के जिस भाग में ताल वाद्यों के वर्ण अथवा पाटाक्षरों का समावेश रहता था, उस भाग को पाट कहा जाता था।

ताल ताल का संबंध लय से होता है। किसी भी सांगीतिक रचना को आधार प्रदान करके सुव्यवस्थित रूप प्रदान करना ताल का उद्देश्य होता है। ताल और स्वर प्रबंध की गति का कारण होने से प्रबंध के चरण कहलाते हैं।

धातुओं के समान प्रबंधों में अंगों की संख्या भी नियमानुसार कम या अधिक की जा सकती है। जाति गायन के समय यह संख्या निश्चित थी, परंतु बाद में काल परिवर्तन के प्रभाव से इनकी संख्या में भी परिवर्तन हुआ और अंगों में प्रयोग को नियमबद्ध करने के लिए पाँच जातियाँ निर्धारित की गईं।



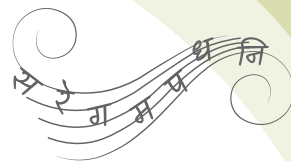
चित्र 4.4— हारमोनियम वादन करते हुए कलाकार

प्रबंध का आधुनिक रूप

प्रबंध के साहित्यिक अर्थ (पदों) को ध्यान में रखा जाए तो आज जितनी भी गायन शैलियाँ प्रचलित हैं वे सब प्रकार प्रबंध के अंतर्गत आते हैं। स्थूल रूप से देखा जाए, तो आज ध्रुपद, धमार, ख्याल, अन्य शास्त्रीय, उपशास्त्रीय संगीत, लोक संगीत की विधाएँ, फिल्म संगीत आदि सभी में कुछ-कुछ परिवर्तन के साथ धातु तथा अंगों का प्रयोग होता है, किंतु प्रत्येक बंदिश में स्वर, ताल व पद का होना आवश्यक है। प्राचीन समय के समान ही वर्तमान समय में खुले आलाप, अनिबद्ध गान की श्रेणी में तथा बंदिश के

साथ गाए गए आलाप, बोलबांट, तान, लयकारी के साथ की गई बद्ध निबद्ध गान की श्रेणी में आते हैं, अतः यह स्पष्ट है कि आज भी प्रबंध हमारे आधुनिक संगीत की विभिन्न गायन शैलियों का आधार है।





1. संगीत रत्नाकर में गीत की परिभाषा किस प्रकार दी गई है?
2. गीत के दो भेद गांधर्व तथा गान में क्या अंतर है?
3. निबद्ध और अनिबद्ध गान का तुलनात्मक विवेचन दीजिए (सारणी बनाएँ)।
4. 'प्रबंध' शब्द से आप क्या समझते हैं?
5. प्रबंध के अंगों के बारे में बताएँ।



ध्रुपद अथवा ध्रुवपद

पंडित शार्ङ्गदेव द्वारा रचित *संगीत रत्नाकर* ग्रंथ में वर्णित 'प्रबंध' गेय विधा के धातु व अंगों के परिवर्तित स्वरूप ध्रुपद अथवा ध्रुवपद एक जोरदार गायकी है, जिस में स्वर तथा ताल का गहरा ज्ञान आवश्यक है। हिंदुस्तानी संगीत में समय-समय पर संगीत की विभिन्न विधाओं ने जन्म लिया है, जिसमें जनरुचि के अनुसार परिवर्तन होते रहे हैं। प्राचीन जाति गायन तथा प्रबंध गायन के पश्चात मध्यकाल के आते-आते कुछ नवीन विधाओं का जन्म हुआ, जिनमें प्रबंध गायन के आधार पर आगे चलकर ध्रुपद गायकी का विकास हुआ।

'ध्रुवपद' शब्द ध्रुव और पद के योग से बना है। ध्रुव का अर्थ स्थिर तथा पद का अर्थ काव्य या गाने योग्य रचना से है अर्थात् जिस रचना में पद निश्चित हों, अटल हों, उसे ध्रुपद या ध्रुवपद कहते हैं। प्रबंध रचनाओं की भाषा संस्कृत थी, परंतु मध्य काल आते-आते भारत पर मुस्लिम शासन के कारण ध्रुपद की रचनाएँ हिंदी, ब्रज व अवधी भाषाओं के साथ उर्दू व फ़ारसी भाषाओं के शब्दों से भी युक्त होने लगीं। ध्रुपद का विकास एक ओर बादशाहों के दरबारों में हुआ, जहाँ उस काल के कलाकारों को सम्मान और आर्थिक संरक्षण प्राप्त होता था और दूसरी ओर मंदिरों में देवी-देवताओं के स्तुति गान के लिए ध्रुपद गेय विधा का प्रयोग किया गया।

ध्रुपद गायकी के संरक्षण का श्रेय पंद्रहवीं शताब्दी के राजा मान सिंह को दिया जाता है। उनके दरबार में अनेक प्रवीण ध्रुपद गाने वाले कलाकारों को आश्रय मिला, जिससे ध्रुपद का विकास चरम सीमा पर पहुँचा। अकबर दरबार के तानसेन जैसे संगीताचार्यों ने ध्रुपद गायकी को परिष्कृत किया। ध्रुपद रचनाओं में सामान्यतः दो से चार पद होते हैं, जिन्हें राग ताल में पखावज की संगती के साथ गाया जाता है।



चित्र 4.5— सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक—वासिफुद्दीन डागर

वाणी के आधार पर ध्रुपद को चार वाणियों में विभाजित किया गया है। ये वाणियाँ चार प्रकार की विभिन्न गान शैलियाँ हैं— खंडार वाणी, नौहार वाणी, डागर वाणी तथा गोबरहार वाणी तथा प्रत्येक गान शैली की अपनी विशेषता है। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद, उच्च श्रेणी की गायन विधा है। रागों की शुद्धता के साथ उच्च कोटि के स्वर ज्ञान तथा ताल के साथ इसका गायन किया जाता है। इसमें प्रमुख रूप से शृंगार, रौद्र तथा भक्ति रस दृष्टिगोचर होता है। पंडित भावभट्ट के ग्रंथ में ध्रुपद के संबंध में इस प्रकार का उल्लेख किया गया है—

“गीर्वाण मध्य देशीय भाषा साहित्य राजितम्, द्वि चतुर्वाक्य
सम्पन्नम् नरनारी कथाश्रयश्चृंगार रस भावाद्यं रागालाप
पदात्मकम्, पादांतानु प्रासयुक्तं पादांतयुगलं च वा प्रतिपादं यत्र
बद्धमेवं पादचतुष्टयम्, उद्गाहध्रुवकाभोगांतरम् ध्रुवपदं स्मृतम्”

अर्थात् संस्कृत या मध्य देशीय (हिंदी) भाषा में रचित गीत, जिसमें दो या चार वाक्य होते हैं तथा नर-नारी के चरित्र का वर्णन रागालाप के माध्यम से किया जाता है शृंगार रस प्रधान होता है, जिसके चरणों का अंत अनुप्रास अथवा यमकादि अलंकारों से होता है तथा उद्गाह, ध्रुव, आभोग एवं अंतरा नामक चार भाग होते हैं, उसे ध्रुपद कहा जाता है।

यह एक आलाप प्रधान गायकी है, जिसके गायन के आरंभ में क्रमशः लय को बढ़ाते हुए रागालाप किया जाता है, जो कि नोम्-तोम् आदि निरर्थक शब्दों के साथ किया जाता है।

आलाप ओम्, अनंत, हरि आदि शब्दों के आश्रय से किया जाता था, बाद में यही आगे चलकर नोम्-तोम् शब्दों में परिवर्तित हो गए। आलाप के पश्चात् ध्रुपद की बंदिश को गाकर विभिन्न लय में बोलों के साथ स्थायी, अंतरा, संचारी व आभोग आदि का विस्तार किया जाता है। ध्रुपद गायन में मुख्य रूप से पखावज से संगत की जाती है। ध्रुपद प्रायः चारताल, सूलताल, तीव्रा, ब्रह्म, रूद्र आदि तालों में गाए जाते हैं। यह एक दमदार गायकी है, जिसमें मींड तथा गमकों का प्रयोग होता है।

ध्रुपद गाने के इतिहास में वृंदावन के स्वामी हरिदास, मियाँ तानसेन, नायक बैजू गोपाल नायक आदि उल्लेखनीय नाम हैं। आधुनिक काल में बहराम खां, बन्दे खां, डागर बंधु, गुंडेचा बंधु, नवलकिशोर जुगलकिशोर, अभय नारायण मलिक, सियाराम तिवारी, जियाउद्दीन खां, नसीरुद्दीन खां, जयपुर के करामत खां आदि उल्लेखनीय नाम हैं। ध्रुपद गाने वाले कलाकारों को कलावंत कहा जाता है।





1. ध्रुपद गायन का विकास किस गेय विद्या से हुआ?
2. ध्रुपद किस तरह की गायन विधि को दर्शाती है?
3. ध्रुपद गायन को किन राजाओं ने आश्रय दिया?
4. ध्रुपद की चार वाणियों के बारे में बताएँ।
5. ध्रुपद गायन शैली को किस प्रकार गाया जाता है?
6. ध्रुपद को किन तालों के ठेकों के साथ गाया जाता है?
7. ध्रुपद के किन्हीं चार कलाकारों के नाम बताएँ।
8. क्या आप कभी किसी ध्रुपद के कलाकार से मिले हैं, उनके बारे में लिखिए।



धमार

ध्रुपद गायन की तरह धमार भी मध्य काल में प्रचलित एक प्रकार की गायन विधा है। कहा जाता है कि धमार का जन्म ब्रज भूमि के लोक संगीत से हुआ है। इसका प्रचलन ब्रज क्षेत्र में प्रचलित लोकगीत के रूप में लंबे काल से चला आ रहा है, जिसमें राधा-कृष्ण के होली खेलने का वर्णन प्राप्त होता है। ब्रज के संपूर्ण क्षेत्र में रसिया और होली जन-जन में व्याप्त है। होली का वर्णन होने से इसे होरी धमार भी कहा जाता है।

धमार की उत्पत्ति के संबंध में विविध मत प्रचलित हैं। कहा जाता है कि होरी नामक ब्रज के लोक गीत के आधार पर धमार का विकास हुआ। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन चरचरी प्रबंध के आधार पर भी धमार का विकास हुआ है, चरचरी प्रबंध के आधार पर होने के कारण होरी का आधार चाचर ताल बन गया। इस प्रकार होरी की बंदिश को विभिन्न रागों में निबद्ध करके शास्त्रीय संगीत के आधार पर नवीन शैली धमार का विकास हुआ। कहा जाता है कि पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तथा सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में मान सिंह तोमर तथा नायक बैजू ने इसका आविष्कार किया। नायक बैजू ने धमारों की रचना को छोटा किया तथा उसे स्थायी और अंतरा में विभाजित कर प्रचलित किया, इसकी गायन शैली का आधार ध्रुपद की तरह ही है। बंदिशों में राधा-कृष्ण की लीलाओं का तथा फाग से संबंधित वर्णन है। इसमें प्रमुखता से शृंगार रस प्रधान होता है।

धमार एक गायन का प्रकार, एक ताल का नाम है। आरंभ में धीमी लय में रागालाप करते हुए क्रमशः लय को बढ़ाते हुए राग विस्तार किया जाता है, तत्पश्चात बंदिश को गाकर विभिन्न लयकारी से तथा बंदिश के बोलों से इसे सजाया जाता है। धमार गायन में मीड तथा गमकों का

प्रयोग होता है। इस शैली में ख्याल की तरह तानों का प्रयोग नहीं होता। धमार गायन प्रमुखता से पखावज के साथ किया जाता है, किंतु आधुनिक काल में इसे तबले की संगती के साथ भी सुना जाता है। शब्दों की प्रधानता, लयकारी तथा रस-भाव ही इस गायन की विशेष पहचान है। धमार गायन किसी भी राग में किया जा सकता है। गत एक शताब्दी में धमार के गायकों में नारायण शास्त्री, बहराम खां, लक्ष्मणदास, मुहम्मद अली खां, आगरे के गुलाम अब्बास खां, उदयपुर के डागरबंधु, सुमति मुटाटकर हुए हैं।



1. धमार को गाने की विधि क्या है?
2. धमार किस गायन शैली से बनी है?
3. किन्हीं पाँच धमार गायकों के नाम लिखिए।
4. पाठ्यक्रम के अतिरिक्त किन्हीं दो धमार बंदिशों को सीखकर, उसमें प्रयुक्त शब्दों पर अपने विचार लिखिए।

ख्याल

ख्याल, भारतीय संगीत की एक लोकप्रिय गान विधा है, जो लगभग चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी से उत्तर भारत में प्रचलित है। यह फ़ारसी भाषा का शब्द है, जिसके कई अर्थ हैं, जैसे— किसी भूली हुई बात की स्मृति, याद, स्मरण, मन में उपजी कोई नई बात, कल्पना, मत, राय, सोच-विचार करना आदि। संगीत में ख्याल का अर्थ अपनी कल्पना से सोचना अथवा विचार करना है जिससे प्रतीत होता है कि इस विधा को अपनी सोच एवं कल्पना से सँवारा जाता है। प्राचीन काल में प्रबंध और रूपक, दो प्रकार की गायन शैलियाँ प्रचलित थीं, प्रबंध से ध्रुपद तथा रूपक से ख्याल शैली का विकास हुआ। ध्रुपद धमार गायन के नियम कठोर होने से इस गायकी का प्रचार धीरे-धीरे कम होने लगा। मुसलमानों के आगमन से संगीत पर भी प्रभाव पड़ा। कहा जाता है कि अमीर खुसरो ने ख्याल गायकी का परिशोधन किया।

चौदहवीं शताब्दी में जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह ने ख्याल शैली को विशेष प्रोत्साहन दिया। उसके पश्चात कुछ समय के लिए ख्याल उपेक्षित सा रहा, किंतु अठारहवीं शताब्दी के आते-आते इसे फिर से प्रोत्साहन मिला। अठारहवीं शताब्दी में मुगल सम्राट मुहम्मद शाह के समय में सदारंग-अदारंग नामक बंधुओं ने ख्याल की नवीन रचना करके उसमें बादशाह की प्रशंसा के शब्द कहे, जिससे बादशाह ने इस शैली को बड़े उत्साह से अपने दरबार में स्थान दिया। सदारंग-अदारंग ने हजारों की संख्या में ख्यालों की रचना कर अपने शिष्यों को सिखाकर उनका प्रचार-प्रसार किया। राज दरबारों में ख्याल को बहुत सराहा गया। संगीत का यह रूप कलाकारों के बीच काफी लोकप्रिय हुआ।





खयाल में दो से छह पंक्तियाँ होती हैं। खयाल की रचना को बंदिश भी कहा जाता है। खयाल दो प्रकार के होते हैं— (1) विलंबित अथवा बड़ा खयाल, (2) द्रुत अथवा छोटा खयाल।

विलंबित खयाल

विलंबित खयाल, गायकी की वह विधा है, जिसमें धीमी लय के साथ गायन प्रस्तुत किया जाता है, राग में प्रयुक्त स्वरों के माध्यम से स्थायी गाकर, कलाकार अपनी तालीम के अनुसार, अलंकार, स्थायी, गमक, मींड आदि से राग में आलाप, बोलबांट, तान आदि के माध्यम से राग को मूर्त रूप प्रदान करता है, बंदिश के बोलों के माध्यम से अपने भावों को प्रदर्शित करने का यह सशक्त माध्यम है। इसके पश्चात अंतरा गाकर उसका विस्तार किया जाता है और अंत में विविध ताने गाकर समाप्ति की जाती है। विलंबित खयाल, एकताल, तीलवाडा, झूमरा, झपताल, रूपक आदि में गाए जाते हैं। इस गायन में ध्रुपद-धमार के गायन की अपेक्षा नियमों में स्वतंत्रता से बढ़त करने की छूट होती है। द्रुत खयाल के दूसरे प्रकार में द्रुत खयाल अथवा छोटा खयाल होता है। छोटा खयाल मध्य लय में गाया जाता है। बंदिश के बोलों के साथ अलग-अलग प्रकार से स्थायी को गाकर विभिन्न प्रकार की सरगम तथा बोलतानें गाई जाती हैं और अंत में तानों को गाकर इसकी समाप्ति की जाती है। छोटे खयाल, एकताल, तीनताल (त्रिताल), झपताल में गाए जाते हैं।

खयाल गायकी के घराने

ज़मींदारी प्रथा तक संगीत को राज दरबारों में स्थान प्राप्त था। उसके पश्चात संगीत राज दरबारों से निकलकर सामान्य मंच तक पहुँचा। अपना चिंतन, अपनी तालीम और अपनी ही रुचि को लेकर जो खयाल बनता है, उसमें गायकी दिखती है और वही गायकी किसी विशिष्ट शैली का प्रतिनिधित्व करने लगती है। खयाल शैली में मूल तत्वों के सिद्धांत, अनुशासन व परंपरा का निर्वाह सम्मिलित रहते हैं। अपनी-अपनी गायन पद्धति के अनुसार घराने के लोगों ने जन रुचि के अनुसार इसमें परिवर्तन करके इसे लोकप्रिय बनाया। खयाल गायकी के घरानों में ग्वालियर, आगरा, दिल्ली, जयपुर, पटियाला, किराना, रामपुर-सहस्रवान आदि प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण घराने हैं, जिनमें कई महान कलाकार हुए हैं। इन कलाकारों ने इस विधा को आज तक जीवित रखा। बीसवीं सदी के खयाल गायकों में मुश्ताक हुसैन खां, आमिर खां, पंडित भीमसेन जोशी, गंगूबाई हंगल, हीरालाल बडोदकर, उस्ताद अब्दुल करीम खां, फैय्याज़ खां, मल्लिकार्जुन मंसूर, बड़े गुलाम अली खां, मोंगूबाई कुरडीकर, डी.वी. पलुस्कर कृष्ण राव, पंडित बालकृष्ण बुआ, ओमकार नाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, बी. आर. देवधर, नारायण राव व्यास, राजा भैय्या पूंछवाले, शंकर पंडित, कृष्ण राव पंडित, किशोरी अमोनकर, नसीर अहमद खान आदि अनेक कलाकार हुए हैं।

खयाल की बंदिशें, ब्रज, अवधी, हिंदी, उर्दू आदि शब्दों से युक्त होती हैं। बंदिशों में प्रेम, गुरु वंदना, भक्ति, शृंगार, कृष्ण लीला जैसे विषयों का चयन मिलता है। खयाल की बंदिशों में सदारंग-अदारंग, प्रेम पिया, सनद पिया, सबरंग, मनरंग मंमन खां, उस्ताद चांद खां आदि के नामों का उल्लेख मिलता है। खयाल किसी भी राग में गाया जा सकता है।



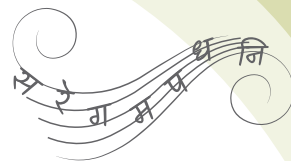
1. खयाल शब्द से आप क्या समझते हैं?
2. खयाल के घरानों के नाम लिखिए।
3. खयाल के विकास के लिए किन राजाओं को श्रेय दिया जा सकता है?
4. खयाल में प्रयुक्त तालों के नामों का उल्लेख कीजिए।
5. विलंबित खयाल एवं द्रुत खयाल से आप क्या समझते हैं?
6. किन्हीं चार खयालों की विवेचना कीजिए—
 - (क) उसमें प्रयुक्त शब्द भारत के किस क्षेत्र से संबंधित है?
 - (ख) बंदिश में प्रयुक्त भाषा एवं उसके अर्थ पर न्यूनतम 100 शब्दों का लेख लिखिए।

ठुमरी

ठुमरी गायन शैली को उपशास्त्रीय गीत विधा माना गया है। ठुमरी की उत्पत्ति के विषय में अलग-अलग धारणाएँ प्रचलित हैं। प्राचीन काल में छालिक्य नामक गीत का उल्लेख मिलता है जिसका प्रयोग नृत्य के साथ होता था। कुछ मान्यताएँ हैं कि ठुमरी इसका ही परिवर्तित रूप है। ठुमरी का जन्म उत्तर प्रदेश के उन लोकगीतों से भी माना जाता है, जो कि नृत्य के साथ गाए जाते थे। ठुमरी शब्द 'ठुम' तथा 'री' के योग से बना है। ठुम का अर्थ है ठुमकना (सुंदर पादक्षेप) 'री' को 'रिझाना' शब्द के अर्थ में लिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि ठुमरी और नृत्य का घनिष्ठ संबंध रहा होगा। आरंभ में ठुमरी नृत्य के साथ गाई जाती थी। बाद में इसका स्वतंत्र गायकी के रूप में विस्तार हुआ। ठुमरी का संबंध 'रास' से भी माना गया है जिसमें राधाकृष्ण की लीलाओं को गीत व कथक नृत्य के माध्यम से मंच पर नृत्य नाटिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ ही ठुमरी का संबंध 'रहस' से भी माना जाता है। 'रहस' शब्द का संबंध नवाब वाजिद अली शाह के दरबार से माना जाता है। जहाँ अनेक नर्तक व नर्तकियाँ शृंगारिक ठुमरियों पर नृत्य करके बादशाह का मनोरंजन करते थे। यही कारण है कि ठुमरी की रचनाओं में यदि एक ओर राधाकृष्ण की लीलाओं से संबंध पद रचनाएँ उपलब्ध होती हैं तो दूसरी ओर नायक-नायिका से संबंधित शृंगारिक (संयोग-वियोग) पद रचनाएँ भी बहुलता से मिलती हैं।

बोल बनाते समय कलाकार विभिन्न अलंकरणों, जैसे— खटका, मुर्की, मींड, कण, टप्पा अंग की तानें, पुकार आदि से ठुमरी गायिकी के प्रस्तुतीकरण करते हैं। इसी के आधार पर ठुमरी की दो शैलियाँ मुख्य रूप से प्रचलित हैं— पूरब अंग और पंजाब अंग। अवध के नवाब वाजिद अली





ने ठुमरी के प्रचार व प्रसार में विशेष योगदान दिया। अवध की राजधानी लखनऊ होने के कारण लखनऊ में भी ठुमरी को पनपने का अवसर प्राप्त हुआ। वाजिद अली शाह ने 'अख्तर पिया' उपनाम से अनेक ठुमरियों की रचना की। वाजिद अली शाह स्वयं एक उच्च कोटि के रसिक और कथक नर्तक थे। ठुमरी गीतों की नाजुक मिज़ाजी और चपलता होने के कारण उसे गाने के लिए भी वैसे ही रागों को चुना गया, जैसे— भैरवी, खमाज, पीलू, तिलककामोद, धानी, पहाड़ी, देस इत्यादि। ठुमरी प्रायः जत, दीपचन्दी, अद्दा, कहरवा आदि तालों में गाई जाती है। ठुमरी की भाषा में ब्रजभाषा, अवधी और भोजपुरी का मिला-जुला मिश्रण है। इनमें शृंगार रस की रचनाएँ अधिक पाई जाती हैं। यह एक भाव प्रधान गायकी है।

ठुमरी, उपशास्त्रीय संगीत का भाव प्रधान तथा मध्य लय में गाया जाने वाला गीत प्रकार है। ठुमरी की बंदिश छोटी होती है। कम शब्दों में भावों को प्रदर्शित करना इसका उद्देश्य होता है। स्थायी और अंतरा इसके दो भाग होते हैं। ठुमरी में शृंगार रस प्रधान होता है।



चित्र 4.6— ठुमरी साम्राज्ञी — गिरिजा देवी

ठुमरी (राग भैरवी)

स्थायी — बारे बलम फुलगेंदवा न मारो
लगत करेजवा में चोट
अंतरा — सैंया निरमोहिया दरदिया न जाने
रखत पलकिया ओट

ठुमरी (राग भैरवी)

स्थायी — बाबुल मोरा नैहर छूटो हि जाए
अंतरा — चार कहार मिल मोरी डोलिया उठावें
अपना बेगाना छूटोही जाए

राग खमाज की एक बंदिश प्रचलित है—

स्थायी — ना मानूँगी – न मानूँगी – ना मानूँगी उनके मनाए बिना
अंतरा — जावो जी जावो तुम तो रस के रसिया
अपनी गरज काहे करत हे बतियाँ
न बोलूँगी, ना बोलूँगी, ना बोलूँगी
श्याम के मनाए बिना

सनदपिया, कदर पिया, अख्तर पिया, बिंदादिन महाराज, लल्लन पिया आदि मौजुद्दीन खां, भैय्या गणपत राव, रसूलन बाई, सिद्धेश्वर देवी, गिरिजा देवी आदि प्रसिद्ध संगीतकार हैं। बड़े गुलाम अली खां, अब्दुल करीम खां, सुरेश बाबू माने, माणिक वर्मा शोभा गुर्तु आदि प्रसिद्ध गायक/गायिकाएँ हैं।

वर्तमान समय के ठुमरी गायक पंडित छन्नूलाल मिश्र के अनुसार ठुमरी गाने वाले कलाकार बहुत कम हो गए हैं, यद्यपि यह बहुत सुंदर गायकी है, किंतु इसमें अथक परिश्रम के कारण इसे एक विशेष वर्ग के लोगों में ही सीखा एवं सुना जा सकता है।



1. ठुमरी की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. किन्हीं पाँच ठुमरी गायकों के पाँच नाम बताएँ।
3. किसी भी एक ठुमरी के शब्दों को लिखिए।
4. ठुमरी ज्यादातर किन रागों में गाई जाती है?
5. ठुमरी में प्रयोग किए जाने वाले तालों के नाम बताएँ।

दादरा

‘दादरा’ ठुमरी शैली की एक शृंगार प्रधान गायन शैली है। जिस प्रकार खयाल गायन में विलंबित खयाल के पश्चात द्रुत खयाल गाने का प्रचलन है, उसी प्रकार ठुमरी गायन के बाद दादरा गाने का प्रचलन है। इनमें लोच या लचक अधिक रहती है। ठुमरी की भाँति यह भी एक शृंगारिक गायकी है। गायन में उन्मुक्तता होती है। दादरा की पद रचना के दो भाग स्थायी व अंतरा होते हैं। कभी-कभी दो से अधिक अंतरे भी हो सकते हैं। लय के साथ गुंथे हुए छोटे-छोटे बोल बनाव दादरा गीतों की विशेषता हैं। रागों की दृष्टि से चपल प्रकृति के रागों में दादरा गीत गाए जाते हैं, जैसे— खमाज, गारा, तिलककामोद, पहाड़ी, पीलू काफी, झिंझोटी, भैरवी इत्यादि। दादरा गायन की प्रस्तुति ठुमरी से कुछ भिन्न रहती है। इनकी बंदिश की चाल लय के अनुरूप होती है। हिंदुस्तानी संगीत में ‘दादरा’ शब्द का प्रयोग एक प्रकार की गायन विधा के अतिरिक्त एक विशिष्ट ताल के लिए भी किया गया है। दादरा गायन अधिकतर दादरा ताल पर ही आधारित रहा है, परंतु कभी-कभी कहरवा तथा दीपचन्दी ताल का प्रयोग भी किया जाता है। इसे मध्य व द्रुत लय में गाया जाता है। उपशास्त्रीय संगीत के रूप में दादरा गान उत्तर भारत की प्रायः सभी संस्कृतियों में लोक शैली में गिना जाता है। इसे मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और झारखंड के कुछ इलाकों में ‘ददरिया’ भी कहा जाता है। लोक शैली में होने से इसकी गति चपल होती है।

दादरा गाने के बाद लगी गाकर इसकी समाप्ति की जाती है। आधुनिक समय में गाए जाने वाले दादरा गीतों के उदाहरण इस प्रकार हैं।





बनारसी दादरा – ताल–दादरा

स्थायी — माना मोर कहनवा, चललूँ अठिलाई के

अंतरा — राधे कमर में बल परि जई है

कतहूँ गिर जइबु अगर बिछिलाई

दादरा (राग खमाज) ताल–दादरा

स्थायी — कोई अचक-लचक मोहनी मूरत आवे रे मन भावे रे

अंतरा — गोवरधन गिरधर गोपाल

नाचत संग ग्वाल बाल

साँवरो यशोदा लाल

बांसुरी बजाए रे

उस्ताद मौजुद्दीन खां द्वारा गाए गए दादरा की बंदिश इस प्रकार है—

❖ पानी भरे री कौन अलबेले की नार झमाझम

❖ हाथ रसिया कांधे गुरिया बांकी चितवन से मोहे घायल करेरी।

गायिका बेगम अख्तर का गाया हुआ दादरा, दादरे का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसकी कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कोयलिया मत गावो ५५

करेजवा लागे कटार

आधुनिक काल में ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी आदि सभी पूरब अंग की गायकी में गाए जाते हैं। दादरा प्रायः ठुमरी गाने वाले कलाकार ही गाते हैं। इन कलाकारों में बरकत अली खां, रसूलन बाई, बेगम अख्तर, गिरीजा देवी, लक्ष्मी शंकर, निर्मला अरूण, नैना देवी, शोभा गुट्टु, सरिता देवी, पद्मावती शालिग्राम आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। आधुनिक काल में चित्रपट संगीत में भी इस विधा का पर्याप्त प्रचलन है।

1. ठुमरी और दादरा की एक-एक बंदिश लिखिए।
2. क्या ठुमरी या दादरा का लोक संगीत से कोई संबंध है?
3. दादरा एक उपशास्त्रीय संगीत की विधा है, समझाइए।
4. दादरे का उदाहरण देते हुए, कतिपय दादरा गायकों के नाम लिखिए।
5. दादरा गीत शैली में सामान्यतः किन रागों एवं तालों का प्रयोग होता है?



अभ्यास

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

1. षड्ज ग्राम के अंतर्गत शुद्ध जातियों का अंतर्भाव है।
2. मध्यम ग्राम के अंतर्गत विकृत जातियों का अंतर्भाव है।
3. जाति गान के लक्षण कहे गए हैं।
4. भरत ने गंधर्व के अंतर्गत स्वराश्रिता तथा दोनों का विवेचन किया है।

नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

1. जाति के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
2. प्रबंध के विषय में विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. ध्रुपद की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. धमार की विशेषताएँ बताते हुए उसमें प्रयुक्त होने वाले ताल का नाम लिखिए।
5. खयाल गायन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. ठुमरी की उत्पत्ति के विषय में लिखिए।
7. दादरा के विषय में वर्णन कीजिए।
8. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही उत्तर पर चिह्न लगाइए।
 - (क) बनारस घराने के अंतर्गत गाई जाने वाली ठुमरी में ब्रज भाषा और फ़ारसी शब्दों का प्रयोग होता है।
 - (ख) पूरब अंग की ठुमरी बिहार एवं बंगाल में रची गई हैं।
 - (i) (क) और (ख) कथन सही हैं।
 - (ii) कथन (क) सही है परंतु (ख) गलत है।
 - (iii) (क) कथन गलत है (ख) सही है।
 - (iv) (क) और (ख) कथन दोनों गलत हैं।
9. (क) दादरा चौताल या एकताल में गाई जाती है।
 - (ख) दादरा प्रायः दादरा या दीपचन्दी ताल में गाई जाती है।
 - (i) (क) और (ख) कथन सही हैं।
 - (ii) कथन (क) सही है परंतु (ख) गलत है।
 - (iii) (क) कथन गलत है (ख) ही सही है।
 - (iv) (क) और (ख) कथन दोनों गलत हैं।

10. (क) प्राचीन काल में प्रबंध और रूपक, दो प्रकार की गायन शैलियाँ प्रचलित थीं।
 (ख) प्रबंध से ध्रुपद तथा रूपक से ख्याल शैली का विकास हुआ।
 (i) कथन (क) और (ख) दोनों सही हैं।
 (ii) कथन (क) सही है परंतु (ख) गलत है।
 (iii) केवल कथन (ख) सही है।
 (iv) (क) और (ख) कथन दोनों गलत हैं।

सुमेलित कीजिए—

अ	आ
1. अपन्यास	(क) विकृत जाति
2. आभोग	(ख) जाति लक्षण
3. डागर बंधु	(ग) चौदह मात्रा
4. कैशिकी	(घ) प्रबंध-धातु
5. धमार	(ङ.) ख्याल
6. सदारंग-अदारंग	(च) ध्रुपद गायक
7. रसूलन बाई	(छ) शृंगार रस
8. ठुमरी	(ज) दादरा
9. उद्ग्राह	(झ) तेनक
10. हरिओम् अनंत	(ञ) अनिर्युक्त
11. आलिक्रम	(ट) धातु
12. छंद	(ठ) प्रबंध

सही या गलत बताइए—

1. षड्ज ग्राम के अंतर्गत सात जातियों का उल्लेख है। (सही/गलत)
 2. जाति में प्रयुक्त स्वर संख्या के अनुसार जातियों को पाँच भागों में विभाजित किया गया है। (सही/गलत)
 3. षाड्व व संपूर्ण जाति गान के दस लक्षणों में से एक है। (सही/गलत)

4. प्रबंध के चार धातु तथा छह अंग होते हैं। (सही/गलत)
5. मान सिंह तोमर को ठुमरी गायन शैली का प्रवर्तक माना जाता है। (सही/गलत)
6. धमार गायन शैली के साथ संगत में प्रयुक्त की जाने वाली धमार ताल सोलह मात्रा की ताल है। (सही/गलत)

विद्यार्थियों हेतु गतिविधि—

1. ग्रामीण क्षेत्रों में गाए-बजाए जाने वाले लोक गीत एवं धुनों का संकलन कीजिए। उनमें प्रयुक्त राग, ताल, रस आदि का विवेचन करके परियोजना बनाएँ।
2. किसी भी ध्रुपद गायक से मिलकर उनका साक्षात्कार लें तथा गायन एवं सीखने की पद्धति इत्यादि पर परियोजना बनाएँ।